एशिया से दूर रहो !

इक्कीसवाँ एशिया न्यूज़लेटर



2026 के शंघाई ग्लोबल साउथ अकादमिक फ़ोरम में 'हैंड्स ऑफ़ एशिया' पुस्तक का लोकार्पण

> प्रिय साथियो,
>
> ट्राईकॉन्टिनेंटल एशिया डेस्क की ओर से अभिवादन।
>
> 16 अक्टूबर को शंघाई में आयोजित वैश्विक दक्षिण अकादमिक मंच (ग्लोबल साउथ अकादमिक फ़ोरम)

में हमने Hands Off Asia: A Peoples Call for Sovereignty and Solidarity पुस्तक का लोकार्पण किया। इस पुस्तक में कोलंबो, श्रीलंका में आयोजित हैंड्स ऑफ़ एशिया **सम्मेलन** में दिए गए भाषणों को संकलित किया गया है।

पुस्तक में नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री और नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता पुष्प कमल दहल (प्रचंडा) का भाषण भी शामिल है। प्रचंडा ने नेपाली कम्युनिस्ट आंदोलन का नेतृत्व करते हुए राजशाही को उखाड़ फेंकने में अहम भूमिका निभाई थी। वे जानते हैं कि साम्राज्यवाद से लड़ना और नव-औपनिवेशिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की सीमाओं के भीतर सरकार चलाना कितनी बड़ी चुनौतियाँ पेश करता है। उनका पूरा भाषण पढ़ें:

> नेपाल में एक दिलचस्प स्थिति बनी है : वहाँ आधा दर्जन पूर्व प्रधानमंत्री हैं, लेकिन दुर्भाग्य से इस समय संसद में केवल मैं ही पूर्व प्रधानमंत्री के रूप में मौजूद हूँ। और मेरा मानना है कि इस सम्मेलन में बात रखने वालों में भी मैं अकेला ही कोई पूर्व प्रधानमंत्री हूँ। यह एक अवसर भी है और चुनौती भी।
>
> आदरणीय नेताओ, विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियो, व साथियो,
>
> इस सुंदर शहर कोलंबो में प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन का हिस्सा बनकर मैं खुद को सम्मानित महसूस कर रहा हूँ। यह शहर लंबे समय से सभ्यता, संस्कृति, व्यापार और राजनीतिक विचारों के संगम का केंद्र रहा है।
>
> मैं आयोजकों का तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने पूरे एशिया से राजनीतिक नेताओं, बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और जन आंदोलनों के प्रतिनिधियों को एक साथ लाकर उन मुद्दों पर विचार-विमर्श का अवसर दिया है, जो एशिया के भविष्य और पूरी मानवता के भविष्य को गहराई से प्रभावित करेंगे। इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण और अनूठे कार्यक्रम को आयोजित करने में सहयोग देने के लिए मैं ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान का भी आभार व्यक्त करता हूँ।
>
> हम ऐसे समय में मिल रहे हैं, जब दुनिया संकट और उथल-पुथल के दौर से गुज़र रही है। अंतरराष्ट्रीय भू-राजनीति में बड़ी तेज़ी से बदलाव हो रहे हैं और शक्ति का संतुलन बदल रहा है। अटलांटिक-केंद्रित शक्ति अब हमारे अपने क्षेत्र, एशिया, की ओर खिसक रही है। एक नई अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था उभरती दिखाई दे रही है। शक्ति का केंद्र धीरे ही सही, पर निश्चित रूप से एशिया की ओर बढ़ रहा है। यह चीन और दूसरे एशियाई देशों के उभार का संकेत है। कहा जा रहा है कि इक्कीसवीं सदी एशिया की सदी होगी। वैश्विक व्यवस्था भी एकध्रुवीयता से बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रही है। वैश्विक दक्षिण के देशों और जनता के लिए यह खुशी की बात है। एकध्रुवीय व्यवस्था में एक देश का वर्चस्व था ; बहुध्रुवीय व्यवस्था में लोकतांत्रिक संभावनाएँ अधिक होंगी, जहाँ वैश्विक दक्षिण को हस्तक्षेप की उचित आवाज़ और ताक़त मिल सकेगी।
>
> इन बदलावों के साथ वैश्विक व्यवस्था के भू-राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी और वैचारिक ढाँचे भी नए सिरे से आकार ले रहे हैं। दशकों से जारी मुट्ठी भर देशों का वर्चस्व अब धीरे-धीरे कम हो रहा है और उसकी जगह बहुलतावादी व वैचारिक रूप से विविध अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य उभर रहा है। इसलिए हमारे सामने सवाल सिर्फ़ यह नहीं है कि शक्ति का केंद्र एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जा रहा है या नहीं। असल सवाल यह है कि इस बदलाव से कैसी विश्व व्यवस्था उभरेगी और वह किसके हितों के लिए काम करेगी ?

हम जानते हैं कि आज दुनिया का प्रमुख वैचारिक अंतर्विरोध साम्राज्यवाद और समाजवाद के बीच है। अधिकांश लोग समझते हैं कि साम्राज्यवाद मुख्य रूप से औपनिवेशिक कब्ज़ा करके, सैन्य विजय हासिल करके और प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण के ज़रिए काम करता है। यह ठीक बात है कि यह रूप आज तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है, लेकिन वर्चस्व कायम करने नए तरीक़े व तंत्र बन चुके हैं। साम्राज्यवाद के नए रूप अधिक जटिल हो गए हैं और वैश्वीकरण की संरचनाओं से जुड़े हुए हैं। चौथी औद्योगिक क्रांति के दौर में साम्राज्यवाद किसी भूभाग पर प्रत्यक्ष कब्ज़ा करने के बजाय उसे आर्थिक रूप से निर्भर बनाकर अपना काम कर रहा है। तकनीकी साम्राज्यवाद (टेक्नो-इम्पीरियलिज़्म) साम्राज्यवाद का एक नया रूप है।

साम्राज्यवाद हमेशा यही कोशिश करता है कि ताक़त और दौलत कुछ गिने-चुने लोगों के हाथों में सिमट जाए, बेशक इस व्यवस्था की क़ीमत आबादी के बड़े हिस्से को चुकानी पड़े। ऐसी व्यवस्था ग़रीबी, असमानता, अन्याय, टकराव और युद्ध को ही बढ़ावा देती है। एशिया के प्रगतिशील लोगों को इस साम्राज्यवादी हमले का मुकाबला करने के लिए एकजुट होना होगा और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ बुलंद आवाज़ में कहना होगा कि एशिया से दूर रहो!



के. पी. रेजी, मैरी हैड अ लिटिल लैम्ब (मैरी का नन्हा मेमना), 2020

अपनी नीतियाँ खुद तय करने की विकासशील देशों की आज़ादी लगातार घटती जा रही है। बाहरी वित्तीय संस्थाएँ, क़र्ज़ की शर्तें, असमान व्यापार समझौते, सट्टा पूँजी और निर्भर अर्थव्यवस्थाओं की बुनियादी कमज़ोरियाँ उनके नीतिगत विकल्पों को सीमित कर देती हैं। किसी देश की आर्थिक संप्रभुता को बिना गोली-बारी किए भी कमज़ोर किया जा सकता है। इसी तरह, बड़ी शक्तियों के बीच रणनीतिक प्रतिस्पर्धा अब सैन्य गठबंधनों, सुरक्षा साझेदारियों, सैन्य अड्डों, हथियारों के हस्तांतरण और भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के रूप में सामने आ रही है।

डेटा, डिजिटल ढाँचे, संचार नेटवर्क, आर्टिफ़िशल इंटेलिजेन्स और सूचना तंत्र आदि पर नियंत्रण भू-राजनीतिक ताक़त का एक अहम स्रोत बनता जा रहा है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म जनमत को प्रभावित करते हैं, चुनावी प्रक्रियाओं पर असर डालते हैं और यह तय करते हैं कि लोगों तक कौन-सी जानकारी पहुँचेगी। तकनीकी ताक़त का कुछ गिने-चुने लोगों और संस्थाओं के हाथों में सिमटना डिजिटल संप्रभुता और लोकतांत्रिक जवाबदेही को लेकर बुनियादी सवाल खड़े करता है। साम्राज्यवाद इन सब क्षेत्रों पर कब्जा करके अपना वर्चस्व कायम करना चाहता है।

हम सूचना युद्ध का उभार देख रहे हैं। भ्रामक सूचनाओं के अभियान, एल्गोरिदम के ज़रिए सूचना का हेरफेर, साइबर हमले, लोगों की सोच को प्रभावित करने की कोशिशें और किसी ख़ास नैरेटिव को थोपना आज अंतरराष्ट्रीय राजनीति के ताक़तवर हथियार बन गए हैं। राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने के लिए अब सीधे हस्तक्षेप के बजाय दूसरे तरीक़े अपनाए जाते हैं। बाहरी ताक़तें खुलकर दख़ल देने के बजाय आर्थिक दबाव, विचारधारा के ज़रिए पैठ बनाने, मीडिया में हेरफेर करने और राजनीतिक प्रक्रियाओं को अपने हिसाब से ढालने की कोशिश करती हैं। इससे साफ़ होता है कि आज का साम्राज्यवाद एक ऐसे एकीकृत सिस्टम के रूप में काम करता है, जिसमें आर्थिक, सैन्य, तकनीकी, राजनीतिक और वैचारिक वर्चस्व एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

संप्रभुता को केवल राज्य के अधिकार तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। संप्रभुता को व्यापक रूप से समझना होगा, कि जनता अपना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भविष्य तय करने में सक्षम हो और उसे ऐसा करने की आज़ादी भी हो। अगर किसी देश के संसाधनों पर बाहरी ताक़तों का नियंत्रण हो, उसके अधिकतर नागरिक फ़ैसला लेने की प्रक्रिया से बाहर रखे जाते हों और विकास का लाभ बस विशेषाधिकार प्राप्त अभिजात वर्ग तक पहुँचता हो, तब राष्ट्रीय स्वतंत्रता का कोई ख़ास मतलब नहीं रह जाता।

इसी तरह, लोकतंत्र को भी चुनावों तक सीमित नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र का मतलब राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में वास्तविक भागीदारी भी है। ऐसा जीवन, जिसमें मज़दूरों, किसानों, महिलाओं, आदिवासी समुदायों, युवाओं, हाशिये पर धकेले गए समूहों और आम नागरिकों को बराबरी का हक़ मिले और वे सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

नेपाल में आधुनिक राजनीतिक बदलाव सशस्त्र विद्रोह, लोकतांत्रिक आंदोलन और क्रांतिकारी आकांक्षा के मेल से आया। वह जन-युद्ध केवल एक सशस्त्र संघर्ष नहीं था, बल्कि संरचनात्मक असमानता, सामाजिक बहिष्कार, सामंती शोषण, केंद्रीकृत राज्य सत्ता और लोकतांत्रिक भागीदारी की कमी के ख़िलाफ़ एक राजनीतिक प्रतिक्रिया था। इसके बाद जन आंदोलन ने लोकतांत्रिक और प्रगतिशील ताक़तों को एक ऐतिहासिक मोड़ पर एक साथ ला खड़ा किया। सामंती राजशाही का अंत और संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य की

स्थापना नेपाल के राजनीतिक इतिहास में एक बड़ा बदलाव था। नेपाल का अनुभव दिखाता है कि सशस्त्र संघर्षों का समाधान शांतिपूर्ण तरीक़ों और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के ज़रिए भी निकाला जा सकता है।

हमारी पार्टी ने सबसे पहले संविधान सभा के चुनाव की माँग रखी। हमने ही संविधान सभा के ज़रिए नया संविधान बनाने की बात की। लोकतांत्रिक तरीक़े से चुनी गई संविधान सभा ने जो संविधान बनाया, उसने संघवाद, समावेशिता, आनुपातिक प्रतिनिधित्व, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और गणतंत्रवाद के सिद्धांतों को संस्थागत रूप दिया।



हित मान गुरुङ (नेपाल), गॉड हैज़ लेफ़्ट माय प्लेस // (मेरे यहाँ से भगवान ने हाथ हटा लिया है), 2018

लेकिन राजनीतिक बदलाव अपने आप ही आर्थिक बदलाव नहीं ले आता। राजनीतिक परिवर्तन के साथ संस्थागत सुधार, अर्थव्यवस्था का लोकतांत्रीकरण और सामाजिक बदलाव भी ज़रूरी हैं। प्रगतिशील आंदोलनों को नेपाल के अनुभव से सीखना चाहिए कि सामंती व्यवस्था से लोकतांत्रिक और समाजवादी दिशा वाली नई व्यवस्था की ओर समाज

को कैसे बदला जा सकता है।

इतिहास गवाह है कि प्रगतिशील ताक़तों ने जब भी एकजुट होकर काम किया है, बड़ी जीत हासिल की है। वहीं, आपस में बँटने पर उन्हें बड़े नुक़सान हुए हैं। अगर हम प्रगतिशील लोग एकजुट होकर काम करें, तो अपना लक्ष्य ज़रूर हासिल कर सकते हैं। नेपाल इसका स्पष्ट उदाहरण है। एकता के लिए कुछ बुनियादी सिद्धांतों पर सहमति ज़रूरी है: लोकतंत्र, संप्रभुता, सामाजिक न्याय, समानता, शांति, पर्यावरण का संरक्षण और मानवीय गरिमा। प्रगतिशील संगठनों को संकीर्ण दल-आधारित हितों से ऊपर उठकर जनता के हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए। बदलाव की राजनीति का भविष्य संकीर्ण गुटबाज़ी में नहीं, बल्कि रणनीतिक सहयोग में है।

श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल और दूसरे देशों में जेन-ज़ी आंदोलनों के उभार ने सामाजिक और आर्थिक बदलाव को लेकर कई गंभीर सवाल खड़े किए हैं। पारंपरिक राजनीतिक ताक़तें इन आंदोलनों को अभी ठीक से समझ नहीं पाई हैं। अधिकांश युवा राजनीति को ख़ारिज नहीं कर रहे, वे बस ऐसी राजनीति को नकार रहे हैं जो उन्हें बाहर रखती है; ऐसी संस्थाओं को नकार रहे हैं, जो उनकी बात नहीं सुनतीं; और वे नकार रहे हैं भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी और सत्ता के कुछ हाथों में सिमटने को। उनकी माँगें जायज़ हैं और आज की वास्तविकता से जुड़ी हैं। लेकिन इस संदर्भ में हमें साम्राज्यवादी ताक़तों की नकारात्मक भूमिका को भी ध्यान में रखना होगा।

साथियो,

किसी भी राजनीतिक पार्टी या परियोजना की असली कसौटी यही है कि वह आम लोगों की ज़िंदगी को बेहतर बना पाती है या नहीं। अगर कोई आर्थिक व्यवस्था लोगों की आजीविका बेहतर किए बिना केवल दौलत पैदा करती है, तो वह अनिवार्य रूप से अस्थिरता को जन्म देगी। दौलत का कुछ हाथों में बेतहाशा सिमटते जाना, लोकतंत्र, सामाजिक एकजुटता और आर्थिक स्थिरता को कमज़ोर करता है। जलवायु परिवर्तन के लिए एशिया [वैश्विक उत्तर से] अपेक्षाकृत कम ज़िम्मेदार है, लेकिन एशिया के देश जलवायु परिवर्तन के घातक ख़तरों का सामना कर रहे हैं। इसलिए पर्यावरण के लिहाज़ से सस्टेनेबल औद्योगीकरण, नवीकरणीय ऊर्जा की ओर बदलाव, पर्यावरण की रक्षा और जलवायु परिवर्तन के असर से निपटने की रणनीतियाँ हमारी विकास नीति के प्रमुख आधार होने चाहिए। विकास का मक़सद लोगों की ज़रूरतें पूरी करना होना चाहिए, न कि केवल मुनाफ़ा कमाना।

एशिया का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम आपसी टकराव के बजाय सहयोग का रास्ता चुनते हैं या नहीं। बड़ी शक्तियों के बीच बढ़ती रणनीतिक प्रतिस्पर्धा से हमारे लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों बढ़े हैं। एशियाई देशों को उन दबावों का विरोध करना चाहिए, जो हमारे क्षेत्र को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़े भू-राजनीतिक गुटों में बाँटना चाहते हैं। शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, संप्रभु समानता, गुटनिरपेक्षता और आपसी सम्मान के सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। बांडुंग सम्मेलन से निकले सिद्धांत हमारे लिए आज भी बेहद अहम है। एशिया की समृद्धि टकराव से नहीं, बल्कि आपसी सहयोग से बढ़ेगी।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज एकजुटता की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। हम फ़िलिस्तीनी जनता के अपना अलग देश बनाने के अधिकार का समर्थन करते हैं। हम किसी भी देश द्वारा अन्य देश पर, किसी भी बहाने से किए जाने वाले कब्ज़े, अंधाधुंध हिंसा और अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून के उल्लंघन का विरोध करते हैं। दक्षिण-दक्षिण सहयोग उभरती बहुध्रुवीय

दुनिया का एक प्रमुख आधार बनना चाहिए। साम्राज्यवाद और किसी अन्य नाम से किए जाने वाले हस्तक्षेप का मुकाबला करने के लिए सभी प्रगतिशील लोगों को एक साथ आना होगा। अगर हम एकजुट होकर काम करें, तो अपना लक्ष्य ज़रूर हासिल करेंगे।

प्रगतिशील आंदोलनों को जनता में आत्मविश्वास, आलोचनात्मक चेतना और जागरूक नागरिक की भावना विकसित करने के लिए बौद्धिक और वैचारिक काम में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना चाहिए। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि हम एशिया की जनता के लिए विकास का एक साझा एजेंडा अपनाएँ। इस एजेंडे के ज़रिए प्रगतिशील ताक़तों को शांति, संप्रभुता, आर्थिक लोकतंत्र, खाद्य संप्रभुता, जलवायु न्याय, डिजिटल संप्रभुता, लैंगिक समानता, युवाओं के सशक्तीकरण और क्षेत्रीय एकजुटता के मुद्दों पर एक साथ आना चाहिए। राजनीतिक पार्टियों, ट्रेड यूनियनों, किसान संगठनों, महिला आंदोलनों, युवा संगठनों, आदिवासी समुदायों, शिक्षाविदों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को सार्थक सहयोग के ऐसे मंचों के ज़रिए मिलकर काम करना चाहिए।

और सबसे जरूरी है कि प्रगतिशील लोग अंतरराष्ट्रीयतावाद की भावना को कायम रखें। उभरती बहुध्रुवीय दुनिया में पुराने सामाजिक भेदभाव, या उनके नए रूप, किसी भी क़ीमत पर दोहराए नहीं जाने चाहिए। इसकी बुनियाद समानता, आपसी सम्मान, एक-दूसरे से सीखने और सामूहिक ज़िम्मेदारी पर टिकी होनी चाहिए। आइए, साहस, विवेक, एकजुटता और दृढ़ संकल्प के साथ मिलकर आगे बढ़ें। हम एक न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण दुनिया बनाने में ज़रूर कामयाब होंगे।



कोलंबो (श्रीलंका) में आयोजित 'हैंड्स ऑफ़ एशिया' सम्मेलन में भाषण देते हुए पुष्प कमल दहल (प्रचंडा)

प्रचंडा का भाषण हमें याद दिलाता है कि विश्व व्यवस्था में बदलाव अपने आप प्रगति की गारंटी नहीं देता। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि राजनीतिक दल और सामाजिक आंदोलन सामाजिक बदलाव का एजेंडा बनाने और उसे लागू करने में कितने सक्षम हैं। इसलिए, अगर हम एशिया की जनता के लिए एक बेहतर भविष्य बनाना चाहते हैं, तो हैंड्स ऑफ़ एशिया (एशिया से दूर रहो!) नारे को हमें संगठनों का विकास करने, नीतियाँ तय करने, और ज़्यादा सक्रिय बनने की दिशा में मोड़ना होगा।

हैंड्स ऑफ़ एशिया सम्मेलन में दिए गए दूसरे भाषण पढ़ने के लिए हैंड्स ऑफ़ एशिया पुस्तक **यहाँ से डाउनलोड करें**। सम्मेलन में हुई पैनल चर्चाएँ आप [यहाँ] भी देख सकते हैं।

स्नेह सहित,

टिंग्स चाक और अतुल चंद्र

[illegible]